

अध्याय बत्तीसवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढाय नमः॥

"हे मनुष्य, 'ईश्वर का नाम लेने से (नामस्मरण करने से) सभी सांसारिक दोषों पर विजय पाया जा सकता है' सतगुरुजी के इन शब्दों को ध्यान में रखकर तुम अपने भवपाश तुड़वा लो। सतगुरुजी का अभयदान प्राप्त कर लो और प्रतिदिन नियम पूर्वक उनके चरणकमलों का चिंतन करो।"

श्रीसिद्धारूढ सतगुरुनाथजी, जो मुमुक्षुओं का आधारस्तंभ हैं, वे जब कृपा करके सिर पर हाथ रखते हैं तब भक्तों का तत्काल उद्धार होता है। कृपा करते समय जब वे अपना हाथ सिर पर रखते हैं, तब अचानक ज्ञानोदय होता है और मन परमात्मा में लीन हो जाता है; ऐसी स्थिति चारो ओर होती दिखाई पड़ती है। एकबार जब एक मनुष्य ने आकर श्री सिद्धारूढजी से पूछा, "मैं आप का हाथ प्रतिदिन मेरे सिर पर रख लेता हूँ, फिर भी मुझे ज्ञान प्राप्ति क्यों नहीं होती?" तब उन्होंने कहा, "सतगुरुजी के प्रति मन में अत्यंत शुद्ध भाव होना आवश्यक होता है, उसी से जीवात्मा का उद्धार होता है; ज्ञान प्राप्ति के लिए, करना, कार्य तथा कर्त्य इन तीनों में सतगुरुजी के प्रति जीवात्मा का शुद्ध भाव होना नितांत आवश्यक होता है। जब कुछ लोग मन में शुद्ध भाव लेकर हमारे पास आते हैं, तब सतगुरु की उपाधिप्राप्त हमारे जैसे मनुष्य, ऐसे लोगों की विशेष ज्ञान प्राप्ति के प्रति हमेशा कार्यरत रहते हैं; क्योंकि केवल शुद्ध भाव से ही सतगुरुजी प्रसन्न होते हैं। अगर पूछोगे की यह शुद्ध भाव कैसा होता है, तो तुम को उसका विवरण देता हूँ। जब भक्त प्रेम पूर्वक सतगुरुचरणों की सेवा करते हैं, तभी अद्भ्य भक्ति बढ़ने लगती है। यह अद्भ्य भक्ति क्या चीज होती है ऐसा पूछोगे, तो मैं जो कह रहा हूँ उसे ध्यान से सुनो। हम जिस देवता की आराधना करते हैं वह देवता तथा स्वयं, इन दोनों में अभिन्नता का भाव होना, इसे अद्भ्य भक्ति कहते हैं। जिस प्रकार हम स्वयं की सेवा करते हैं, उसी प्रकार सतगुरुजी की सेवा करनी चाहिए। स्वयं के शरीर को सुख तथा आराम प्राप्त हो इसलिए हम विविध तरकीबें ढूँढते हैं, उसी प्रकार हमेशा अपने मन में सतगुरुजी के सुख तथा आराम के प्रति विचार होने चाहिए, तभी शुद्ध भाव की निर्मिती होती है। ऐसा शुद्ध भाव होने से हमारे मन में अपने शरीर के प्रति होने वाला

अहंकार (इसे देहाभिमान कहते हैं) नष्ट हो जाता है, उसके पश्चात गुरुमहाराजजी शिष्य के सिर पर कृपालु होकर हाथ रखते हैं। जिससे, वह स्वयं ब्रह्म है तथा उसमें और गुरुजी में अभेद हैं, इस प्रकार का ज्ञान उसे प्राप्त होता है।" सतगुरुजी की बातें सुनकर श्रोतागणों ने एक प्रश्न उन्हें पूछा, "इस प्रकार के अद्भुत भाव की निर्मिती होने के लिए अगर किसी ने ऐसी गुरुसेवा की हो, तो हमें उसके बारे में बताइए।" सज्जन श्रोतागण, अब मैं जो आप को कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनिए।

सिद्धारूढ़जी जब प्रथम हुबली में पधारे थे, तब वे डुमगेरी (हुबली का उपनगर) में रहते थे; वहाँ वे चरवाहों के साथ खेलते थे। उस समय उन्हें किसी से भी मिलना पसंद नहीं था; लोगों को दूर से देखते ही या तो वे भाग जाते या लोग दर्शन के लिए आए तो मौन धारण करके बैठ जाते थे। एकबार हिरेमठ (गाँव का नाम) का गुरुपादय्या नाम का एक मनुष्य सिद्धजी के दर्शन के लिए आया; सिद्धजी को दूर से देखते ही उसे आश्चर्य हुआ। उस समय सिद्धारूढ़जी पेड़ पर चढ़कर बैठे थे, उनके हाथ में अनेक बड़े बड़े पत्थर थे। उनमें से एक पत्थर लेकर उन्होंने नीचे खड़े हुए बालक के सिर पर फेंका; सिर पर पत्थर से आघात होते ही वह बालक वेदना से कराहने लगा। अन्य बालकों का शोरगुल सुनकर सिद्धजी ने और एक पत्थर लेकर मुख से "शिवाय नमः" कहते हुए उसी बालक को मारा; दूसरा पत्थर सिर पर लगते ही वह बालक अचानक शांत हो गया और रोना बंद करके हँसने लगा। इस दृश्य को देखकर गुरुपादय्या आश्चर्य से दंग रह गया। वह मन में बोला की लोग इसे पागल समझते हैं, परंतु मुझे तो लगता है की हमारे जैसे मूर्खों को उद्धरने के लिए आया हुआ यह एक अवधूत है। जो इसकी सेवा करेगा वह निश्चित ही इस संसार से मुक्त होगा तथा उसके त्रितापों (ताप यानी आपत्ति वा संकट; ये तीन प्रकार के होते हैं, आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक) का नाश होगा। निश्चित ही यह ब्रह्मज्ञानी है, इसीलिए उसे देहभान नहीं रहा। इसे भोजन देना यह उसकी उत्तम सेवा होगी। चूँकि मेरा इससे परिचय नहीं है, अगर मैं इस के पास जाऊँगा तो कदाचित्त वह भयभीत होगा, या अनावश्यक उपाधि को टालने हेतु, वह भाग जाएगा, अब क्या करें? इस प्रकार मन ही मन सोचते हुए, जिसे

सिद्धजी ने पत्थर से मारा था उस बालक के पास धीरे से जाकर उसने पूछा, "इसने जब पहली बार तुम्हें पत्थर से मारा तब तो तुम रो पड़े, परंतु दूसरी बार फिर पत्थर से मारने के पश्चात् तुम शांत हो गए, ये कैसे संभव है?" उसने कहा, "यह पागल जरूर है, परंतु दूसरों को दुख होने से वह तुरंत उनका दुख दूर करता है, ऐसी इसकी महिमा है। पहली बार पत्थर के आघात से मुझे बहुत वेदना हुई, परंतु दूसरी बार किए पत्थर के आघात से बहुत आराम मिला। इस प्रकार यह प्रतिदिन हमारे साथ खेलता है, कोई भी इसका खेल समझ नहीं पाता।"

उस बालक के शब्द सुनकर गुरुपादय्या आनंदित हुआ, उसपर उसने पूछा, "सिद्धजी किस प्रकार का भोजन लेते हैं?" उसने कहा, "हम बकरियाँ चराते हैं, वह हम से बकरियों का दूध माँगकर पीता है; कभी हमारे कलेवे से एकाध भाकरी लेता है अन्यथा कभी कभी मिट्टी खाकर पानी पीता है।" उस बालक की बातें सुनकर गुरुपादय्या अत्यंत दुखी हुआ। उन्हें भोजन अर्पण करने का विचार करके वह उनके समीप गया। गुरुपादय्या पेड़ के नीचे आते ही, सिद्धनाथजी पेड़ से नीचे उतरे; झट से गुरुपादय्या ने उनके चरणों पर माथा रखा। तत्क्षण उन्होंने गुरुपादय्या का सिर अपने पाँव से कुचला; उसके पश्चात् उसके सिर पर एक लात मारकर वे उसकी ओर देखते खड़े रहे। गुरुपादय्या हाथ जोड़कर सिद्धजी के सामने शांति से खड़ा हुआ और बोला, "आप मेरे घर पधारिए और जैसे आप ने मुझे अभी पावन किया, उसी प्रकार मेरे घरके सभी सदस्यों को भी पावन कीजिए।" सिद्धजी ने मन ही मन सोचा की यह भक्त निर्भय लगता है और उसे कहा, "जो तुम मुझे तुम्हारे घर पर आने पर देने वाले थे, वह यहीं लाकर दे दो। मैं कतई तुम्हारे घर नहीं जाऊँगा। अब यहाँ से तुरंत निकल पड़ो।" ऐसा कहकर उन्होंने जबरदस्ती से उसे भेज दिया। गुरुपादय्या तेजी से घर गया और उसने पत्नी से कहा, "हमें खजाना मिला हुआ है, उससे हमारा जन्म धन्य हो गया है, अभी अभी मैंने एक अवधूत को देखा है। इसलिए चावल, भाकरी घर में जो कुछ भी है वह दे दो, मैं जाकर उन्हें देता हूँ।" पति की बात सुनकर अत्यंत संकोचित होकर उसने घर में जो अन्न था, वह उसे दे दिया; उसे लेकर वह निकल गया। वे अत्यंत कंगाली की हालत में होने के कारण, भीख माँगकर

अपना गुजारा करते थे। उनका पुत्र भीख माँगकर जो खाना ले आता था, वे तीनों वह आपस में बाँटकर खाते थे। इसीलिए किसी और को अन्न देते समय उसकी पत्नी को बहुत संकोच हुआ। परंतु शुद्ध श्रद्धा तथा भक्ति का भाव मन में होने वाले गुरुपादय्या के मन में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं था। अस्तु। गुरुपादय्या ने वह खाना सिद्धारूढ़जी के सामने लाकर रखा, उन्होंने उसे सभी बालकों में बाँटकर, थोड़ासा स्वयं खा लिया। सिद्धजी ने गुरुपादय्या से कहा, "तुम ने हम लोगों को बहुत ही कम खाना लाकर दिया। अगर और थोड़ा लाकर दोगे तो शायद वह हमारे लिए काफ़ी होगा।" गुरुपादय्या ने कहा, "मैं अभी घर जाकर आप सभी के लिए भरपूर खाना लेकर आता हूँ।" ऐसा कहकर घर लौटकर उसने देखा तो केवल उसी के हिस्से का खाना शेष था, वह उसने लाकर सिद्धजी के सामने रख दिया और स्वयं भूखा रहा। वह मन ही मन अत्यंत आनंदित हुआ था और कह रहा था की हालाँकि आज मैं भूखा भी रहा, फिर भी सतगुरुजी को खाना खिलाने के कारण मुझे ऐसा लगता है की जैसे मैंने किसी व्रत का पालन किया हो। इसलिए मैं धन्य हो गया हूँ। सिद्धजी ने वह खाना सभी बालकों में बाँट दिया और स्वयं थोड़ासा खाया; उस खाने में से एक भाकरी का टुकड़ा उन्होंने उसे दे दिया और उतने में ही वह संतुष्ट हो गया।

अति श्रद्धा और भक्ति से हाथ जोड़कर उसने भाकरी का प्रसाद स्वीकार किया और अमृत समझकर उसे खा लिया। उसपर एक अचरज हुआ। वह एक टुकड़ा खाते ही उसका पेट भर गया और उसने तृप्त होकर डकार दिया। मन ही मन वह आश्चर्य से दंग रह गया। वह सोचने लगा की यह साक्षात् ईश्वर ही होगा, अगर मैं इसकी सेवा में लग जाऊँ तो मेरा जन्म सफल हो जाएगा। उसपर सिद्धजी को प्रणाम करके वापस घर लौटते समय मार्ग में एक और सज्जन उसे मिला और बोला, "मैंने अपनी आँखों से तुम्हें उस भवी के हाथ से भाकरी का टुकड़ा लेकर खाते हुए देखा है; अब यह खबर जाकर मैं सभी को बताता हूँ। अब तुम भ्रष्ट हो गए हो, हम सभी तुम्हें हमारी जाति से बहिष्कृत करेंगे और जो भी कोई तुम्हें अपने घर खाने पर बुलाएगा, उसका भी बहिष्कार करेंगे।" ऐसा कहते हुए उस सज्जन ने अपने आँखों देखा हाल सभी को बयान करके गुरुपादय्या को बहिष्कृत करवाया। सभी मिलकर उसे बोले, "तुम या तो

हमारा मठ छोड़कर जाओ या उस भवी की संगति छोड़ दो, अन्यथा हम तुम्हें प्रायश्चित्त देंगे। गुरुपादय्या ने कहा, "मैं कतई सिद्धारूढ़जी को छोड़ने वाला नहीं हूँ, क्योंकि वे ईश्वर का अवतार हैं इसकी मुझे प्रतीति हो गयी है। मेरी पत्नी तथा पुत्र को यहीं रखकर मैं मठ छोड़कर किसी दूसरी जगह चला जाऊँगा।" वे सब बोले, "हम जानते हैं की तुम निश्चित ही जिसे ईश्वरी अवतार समझते हो, उसी के साथ रहने जाओगे। हे भ्रष्ट मनुष्य, सचमुच ही तुम्हारी नीति भ्रष्ट हो गयी है।" उनकी बातें सुनकर भी गुरुपादय्या को चुपचाप बैठा हुआ देखकर उसकी पत्नी उसे सिद्धारूढ़जी की संगति छोड़ने का अनुरोध करने लगी। पुत्र भी क्रोधित होकर बोला, "पिताजी, उस भवी की संगति आप को क्यों अच्छी लगती हैं? घर में पड़े रहने से कौन से कष्ट होते हैं आप को? निश्चित ही आप पगला गये हैं। बुढापे के कारण आप की बुद्धि सठिया गयी है, अब आप घर छोड़कर चले जाईए!" उसकी बातें सुनकर भी गुरुपादय्या चुपचाप ही रहा। उसके पश्चात हाथ में एक झोली लेकर वह घर छोड़कर निकल पड़ा, गाँव में घूमकर उसने भिक्षा माँग ली और सीधा सिद्धजी के पास गया। इस प्रकार वह भिक्षा माँगकर झोली सिद्धारूढ़जी के सामने रखने लगा और उन्होंने दिया हुआ प्रसाद खाकर हर्षित होकर रहने लगा।

गुरुपादय्या की भक्ति देखकर अनेक भक्त आने लगे और सिद्धारूढ़जी को देखकर कहने लगे की सचमुच हमें सतगुरुजी प्राप्त हुए। उसपर वे आग्रह सहित प्रार्थना करके अपने अपने घर ले जाकर सिद्धजी को भोजन कराते थे। उनमें से कोई एक उन्हें अपने घर ले जाकर प्रतिदिन उनसे पुराणों पर प्रवचन कराता था, उनके मुख से निरुपण सुनने से सभी आनंदित होते थे। सिद्धजी उद्धारकार्य में लगे हुए देखकर गुरुपादय्या को मन ही मन बहुत हर्ष हुआ, क्योंकि, वह समझ गया था की उनके मुख से बोध सुनने से स्वरूप का सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है। एकबार सभी भक्तों के सामने गुरुपादय्या ने कार्तिक महीने की पूर्णिमा के दिन सतगुरुजी की बड़े धूमधाम से पूजा करने का प्रस्ताव रखा; सभी ने उसका प्रस्ताव स्वीकार किया। सभी ने मिलकर एक भव्य मंडप की रचना की और उसमें सिद्धारूढ़जी को बिठाकर पूजा करने हेतु एक सुंदर सिंहासन रखा। कार्तिक पूर्णिमा के दिन भक्तों ने सिद्धजी को सिंहासन पर बिठाकर सोने के अलंकार

पहनाकर सजाया; सिर पर फूलों से सजाया हुआ मुकुट, गले में रत्नपदक से युक्त कंठा और मोतियों की माला तथा फूलों के हार, कंधे पर रेशम का वस्त्र, इस प्रकार सजाए हुए सिद्धारूढ़जी सुंदर लग रहे थे। उनके चेहरे पर शांत भाव था, उनकी कृपादृष्टि अंतःकरण को छू रही थी और उसमें स्थित ग्रंथियाँ (अज्ञानवश गलत धारणाओं की गाँठें) तोड़कर दुष्टों का भी उद्धार कर रही थी। जो भी पूजा देखने आए थे, वे कह रहे थे की साक्षात् भगवान शिवजी को सगुण रूप में देखकर वे धन्य हो गए।

दिन दिन हुबली में भक्तगणों की संख्या बढ़ने लगी और सिद्धारूढ़जी की महिमा अनेक देशों में फैल गयी। प्रतिदिन अन्य गाँवों से आने वाले भक्तगणों के लिए एक भव्य मठ की स्थापना की गयी; शिष्य भी उसी मठ में रहते थे। बहुत सारे लिंगायत लोग भी उनके भक्त हो गये। उसके पश्चात उन्होंने फिर से गुरुपादय्या को अपने बिरादरी में स्थान दिया। ऐसे गुरुपादय्या की श्रद्धा सचमुच ही धन्य है, जिसने अनेक संकटों का सामना करने के बावजूद भी गुरुचरणों को न छोड़ते हुए उनकी सेवा में किसी भी प्रकार की बाधा आने नहीं दी। उसने सबसे पहले सतगुरुनाथजी की श्रेष्ठता और महिमा समझ ली, अन्य भक्तगण उसके पश्चात आये। अनेक कष्टों को सहकर उसने अज्ञान की खान में छुपा हुआ वह अनमोल सतगुरु रूपी रत्न सबके सामने लाया। उसके पश्चात लोग उस रत्न का लाभ उठाने लगे। हे मुमुक्षुगण, गुरुपादय्या ने लाकर दी हुई तथा कभी भी खत्म न होने वाली यह संपत्ति आप दोनों हाथों से लूट लीजिए। दयालु सिद्धसतगुरुजी भक्तों का अनमोल रत्न है, उनकी भक्ति करने से उनकी कृपा से भवबंधन नष्ट होता है। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह बत्तीसवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥